

श्री पद्मसिंह मुनिराज कृत

णाणसार
(ज्ञानसार)

पं॰ श्री त्रिलोकचंद जी कृत
भाषाटीका सहित



version : 002 : 09 मार्च 2023
First electronic version : 19 फ़रवरी 2023

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी, वीर निर्वाण सम्वत् 2549
भगवान श्री वासुपूज्य के जन्म एवं तप कल्याणक के शुभ अवसर पर

श्री पद्मसिंह मुनिराज कृत यह अद्भुत ग्रन्थ णाणसार (ज्ञानसार) आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। यह ग्रंथ अलौकिक है इसकी एक एक गाथा अत्यन्त तात्त्विक है। इस ग्रंथ के पूर्व में उपलब्ध डिजिटल वर्जन ज़्यादा बेहतर रुप से उपलब्ध नहीं थे तो यह एक छोटा सा प्रयास है इस ग्रंथ के बेहतर डिजिटल वर्जन को भव्य जीवों को उपलब्ध करवाने का, **यदि कोई साधर्मी जन इस ग्रंथ को छपवाकर अन्य जनों को भी उपलब्ध करा देंगे तो वीतरागी देव शास्त्र गुरु की और जैन धर्म की महान सेवा होगी।** ग्रंथ को तैयार करने में पूर्ण सावधानी रखी गई है किंतु हम अल्प मति और अज्ञानी जीव हैं यदि टाइपिंग संबंधी कोई त्रुटि हुई हो तो निम्न ईमेल एड्रेस पर मेल करके हम अल्प ज्ञानी जीवों पर कृपा करें

infinitejainism@gmail.com

अन्य प्राचीन ग्रंथों/रचनाओं के बेहतर वर्जन को डाउनलोड करने के लिए आप निम्न लिंक पर जाकर डाउनलोड कर सकते हैं। आचार्य प्रवर 108 श्री सूर्यसागर जी महाराज के ग्रंथों को भी आप यहां से डाउनलोड कर सकते हैं।

Download PDF here **or** Download PDF here

विषय सूची

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्री पद्मसिंह मुनिराज कृत

णाणसार

(ज्ञानसार)

मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दोबद्ध व भाषाटीका सहित

सिरिवड्ढमाणसामी सिरसा णमिऊण कम्मणिड्डहणं।
वोच्छामि णाणसारं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥१॥

श्रीवर्द्धमानस्वामिनं शिरसा नत्वा कर्मनिर्दहनं।
वक्ष्यामि ज्ञानसारं यथा भणितं पूर्वसूरिभिः ॥१॥

(चौपाई)
कर्मनाश अविचल थिति पाई, स्वामी वर्द्धमान सिर नाई।
पूर्वाचार्य कथन अनुसारी, ज्ञानसार वर्णूं सुखकारी ॥१॥

(भाषाकार का मंगलाचरण)
भूत भविष्यत अभीके, नमूं केवली सर्व।
द्वादशांग श्रुतको नमुं, नमुं गुरुगत गर्व ॥१॥
ज्ञानसार प्राकृत रचा, पद्मसिंह मुनींद।
रचिहूं भाषा चौपाई, जजि तस पद अरविंद ॥२॥

अर्थ- कर्मों के नाश करने वाले श्री वर्द्धमान जो अंतिम तीर्थकर तिनको उत्तम अंग जो मस्तक ता करि नमस्कार करि जैसे पूर्वाचार्यों ने वर्णन किया उस ही अनुक्रम करि ज्ञानसार नाम ग्रंथ को कहूंगा।

भावार्थ- ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय, यह च्यार तो घातिया कर्म और वेदनीय, आयु ,नाम, गोत्र यह च्यार अघातिया, इन सब आठों कर्मों को नष्ट करि अविचल स्थान ताहि प्राप्त हुए। अतः अनंतज्ञान को प्राप्त हुवे कारण जिस मार्ग से उन्होंने ज्ञानविभव पाई उस ही मार्ग का वर्णन किया जायगा। अतः इस ग्रन्थ की आदि में वो ही आराध्य हैं।

प्रश्न- इस ही मार्ग से ही अनंत जीवों ने ज्ञानविभव प्राप्त करी है। उनको क्यों नहिं नमस्कार किया?

उत्तर- अंतिम तीर्थंकर से ही पंचमकाल में धर्म की परिपाटी चल रही है। इस समय के जीवों के लिये तो विशेष उपकारी वही हैं। अतः वह ही मुख्य आराध्य हैं।

आगे- यह जीव संसार परिभ्रमण क्यूं करें हैं सोई कहैं हैं

जीवो कम्मणिबद्धो चउगइसंसारसायरे घोरे।
बुढुई दुक्खक्कंतो अलहंतो णाणबोहित्थं ॥२॥

जीवः कर्मनिबद्धः चतुर्गतिसंसारसागरे घोरे।
ब्रुडति दुःखाक्रान्तो अलमानः ज्ञानबोधित्वम् ॥२॥

(चौपाई)
कर्मबंध से यह अज्ञानी, ज्ञान नाव को नहिं गहिं प्राणी।
दुःखयुक्त भवसागर मांही, चउ गतिमें डूबै सक नांहि ॥२॥

अर्थ- ज्ञानावरणादि कर्मों से बन्धा हुआ यह जीव ज्ञानरूपी नाव को नहीं पाकर नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव इन च्यार गतिरूप संसार- समुद्र में डूबे दुःखी होय है।

भावार्थ- अनन्तानन्त काल तांई तो यह प्राणी मूढ़ मिथ्यात्व के उदय अज्ञानरूप ही रहा, जहां अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान पाइये हैं। वहां से काललब्धि तैं निकसि दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय इन तिर्यंच पर्यायनि में हूँ याके सुणकर समझनेयोग्य मति- श्रुतज्ञान ही नहीं हुआ जिससे कि उपदेशादि सुनकर विचारपूर्वक हित अहित को जाण सके। यहां तक तो सम्यग्ज्ञान की योग्यता ही नहीं। कदाच सैनी पंचेंद्रिय भी हुआ तो सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का कारण मिलना दुर्लभ। कोईक तिर्यंच के उपदेशादि का निमित्त पाय काल लब्धितैं सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होय है तौ भी महाव्रतादि धारण करि मुक्तिसाधन की पूर्ण योग्यता नहीं। ये सर्व पयायें उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

यहां तक तो सम्यग्ज्ञानरूपी नौका की प्राप्ति ही दुश्वार है इस मनुष्य जन्म में सम्यग्ज्ञानरूपी नौका की प्राप्ति की योग्यता है सोहू द्रव्य क्षेत्र काल भाव बाह्य निमित्त विना बणे नहीं, इसलिये ज्ञान भावना मनुष्य पर्याय बिना और पर्यायनि में मुक्तिप्राप्ति के योग्य पा सकै नहीं। और ज्यादा पर्यायें यह जीव ऐसी ही पावै हैं कि जहां इस ज्ञान नौका को पहचान भी न सकै। इसे नहीं पाकर ही प्राणी संसार- समुद्र में बहा जाय है सो निकल सकै नहीं। अतः अनादिकाल तैं बोधिलाभ हुआ ही नहीं, इस ही लिये अद्यापि संसारचक्र से निवृत्त हुआ नहीं।

आगैं- कैसा ज्ञान ग्रहण करने योग्य है सो कहैं हैं-

णाणं जिणेहि भणियं फुडत्थवाईहि विगयलेवेहिं।
तं विय णिस्संदेहं णायव्वं गुरुपसाएण ॥३॥

ज्ञानं जिनैः भणितं, स्फुटार्थवादिभिः विगतलेपैः।
तदेव निस्संदेहं, ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥३॥

(चौपाई)
स्पष्टवाद मिलेपी जोई, जिनवर कथित ज्ञान जो होई।
निःशंकित होके उर धारो, गुरु उपदेश थकी निरधारो ॥३॥

अर्थ- गुरु के उपदेश से ज्ञान जानना चाहिये। कैसा ज्ञान जो- कि तीर्थंकर केवली से कहा हो। तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ चलाने वाले होते हैं। और का कहा प्रमाण नहिं; क्योंकि प्रमाणिक वक्ता के वचन प्रामाणिक होते हैं। तीर्थंकर स्पष्ट रूप में पदार्थों का वर्णन करते हैं। क्योंकि स्पष्ट वर्णन बिना मंदबुद्धि समझे नहीं।

तीर्थंकर कर्मों के लेप से रहित हैं, कर्म लेप दूर हुए विना सर्वज्ञ नहीं हो सके। सर्वज्ञ हुए विना स्पष्ट कैसे जाने। स्पष्ट जाने बिना यथार्थ उपदेश नहीं हो सकता। इसलिये उनही का कहा हुआ ज्ञान सन्देह रहित है

प्रश्न- इस पंचमकाल में ऐसे वक्ता सो कोई है नहीं फिर सत्यार्थ कैसे समझे?

उत्तर- उनके द्वारा कहे ग्रंथों के अनुकूल हो उसे सत्यार्थ समझो।

प्रश्न- आजकल जो ग्रन्थ देखे जाते हैं वह तो छद्मस्थ आचार्यों की कृति है।

उत्तर- अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान ने जो व्याख्यान किया ताकी गणधर व ऋषियों ने द्वादशांग रूप रचना की जिसके बाद अनुक्रम से ज्ञान की कमी होती गई। वर्द्धमान भगवान के ६४३ वर्ष बाद पुष्पदंत आचार्य तथा ६६३ वर्ष पीछे भूतबलि आचार्य हुए उन्होंने ग्रन्थरूप रचना कर पुस्तकाकार किया क्योंकि ऐसा किये विना ज्ञान नष्ट हो जाता।

और भी अनेक आचार्यों ने अनेक ग्रन्थ रचे सो भी उतनी विस्तृत रचना नहीं किन्तु संक्षेप में साररूप से द्वादशांग के अनुकूल रचे इसलिये परिपाटी अपेक्षा सर्वज्ञ कथित ही है।

प्रश्न- ग्रन्थ तो अन्य धर्मवालों के भी हैं वह भी सर्वज्ञकथित बताते हैं फिर कैसे निर्णय किया जाय।

उत्तर- ग्रन्थों को मिलान करके जो ग्रन्थ युक्ति अनुमान प्रत्यक्ष से बाधित नहीं हो सो प्रमाण मानो। निर्णय बुद्धि से विचारे तो सांच झूठ छिपै नहीं, इसप्रकार निर्णय करो और सर्वज्ञकथित ग्रहण करो।

कंदप्पदप्पदलणो डंभविहीणो विमुक्कवावारो।
उग्गतवदित्तगत्तो जोई विण्णाय परमत्थो ॥४॥

कन्दर्पदर्पदलनो दम्भविहीनो विमुक्तव्यापारः।
उग्रतपोदीप्तगात्रः योगी विज्ञेयः परमार्थः ॥४॥

(चौपाई)
काम गर्वके दलनेवाले, गत व्यापार कपट सबटाले।
उग्र तपोंसे दीपित काया, सो वक्ता ज्ञानी मुनिराया ॥४॥

अर्थ- कामरहित ज्ञान पूजा कुल जाति पराक्रम वैभव तप शरीर इन आठ प्रकार के मदों से रहित उग्र तपों से दीप्तिमान शरीरधारी ऐसे गुरु ही ज्ञान के उपदेश के लिये समर्थ हैं।

भावार्थ- कामी मानी कपटी रागद्वेष युक्त गुरु सत्यार्थ उपदेश नहीं दे सकते इसलिये ग्राह्य नहीं।

पंचमहव्वयकलिओ मयमहणो कोहलोहभयचत्तो।
एसो गुरुत्ति भण्णइ तम्हा जाणेह उवएसं ॥५॥

पचमहाव्रतकलितो मदमथनः क्रोधलोभभयत्यक्तः।
एष गुरुरिति भण्यते तस्मात् जानीहि उपदेशं ॥५॥

(चौपाई)
शुद्ध महाव्रत पाँचो धारै, क्रोध लोभ मद मोह निवारै।
परिषह जीत भय स्मर खोई, ऐसे गुरु उपदेशक होई ॥५॥

अर्थ- शुद्ध महाव्रत से युक्त दूर हुए हैं काम क्रोध लोभ भय चिंता जिनके ऐसे गुरु का उपदेश सुनो। क्योंकि स्वयं व्रत रहित क्रोधी लोभी मायावी डरपोक चिंतावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सकते।

आगै ध्यान का वर्णन करैं हैं-

पत्तोवएससारो जोई जइ णवि जिणेइ णियचित्तं।
तो तस्स ण थाइ थिरं झाणं मरुपहयपत्तंव ॥६॥

प्राप्तोपदेशसारः योगी यदि नैव जयति निजचित्तं।
तदा तस्य न स्थीयते स्थिरं ध्यानं मरुत्प्रहतपत्रमिव ॥६॥

(चौपाई)
सार देशना योगी पाके, निज आत्मा में निज मन लाके।
नहिं रोकै तो मन चल होई, पवन वेगतें पत्ते ज्योंई ॥६॥

अर्थ- उपरोक्त ऐसे गुरु से प्राप्त किया है उपदेश का सार जिसने ऐसा योगी आत्मा में अपने चित्त को नहीं रोकै तो निश्चल ध्यान आत्मचिंतारूप नहीं होता, पवनवेग में पत्ते की तरह।
भावार्थ- सच्चे गुरु से उपदेश लेकर योगी आत्मचिंतवन विषै चित्त को लगावे नहीं तो पवन से पत्ते की तरह स्थिर नहीं रहे।

झाणेण विणा जोई असमत्थो होइ कम्मणिड्डहणे।
दाढाणहरिविहीणो जह सीहो वरगयंदाणं ॥७॥

ध्यानेन विना योगी असमर्थो भवति कर्मनिर्दहने।
दंष्ट्रानखरविहीनो यथा सिंहो वरगजेंद्राणां ॥७॥

(चौपाई)
ध्यान विना ध्याता नहिं होई, कर्म दहनको समरथ कोई।
नख दाढ़ों बिन केहरि जैसे, गज घानन समरथ नहिं तैसें ॥७॥

अर्थ- जैसे नख और डाढ़ों के विना सिंह मदोन्मत हस्तियों को नाश करने में असमर्थ होता है तैसे ध्यान के विना योगी कर्मों के नाश करने में असमर्थ होता है।

भावार्थ- आत्मध्यान विना कर्मनाश होते नहीं।

तम्हा तडिव्वचवलं णियचित्तं जोइणा जिणेयव्वं।
जियचित्तं णियझाणं होइ थिरं बद्धसलिलंब ॥८॥

तस्मात् तडिद्वत् चपलं निजचित्तं योगिना जेतव्यं।
जितचित्तं निजध्यानं भवति स्थिरं बद्धसलिलमिव ॥८॥

(चौपाई)
मन चंचल चपलाकी नांई, ता मनको वश करहू सांई।
बांधे बिन जिम जल स्थिर नांही, मन वश विन ध्यान न हो स्थायी ॥८॥

अर्थ- क्योंकि योगियों को विजली के सम्मान चंचल चित्त को जीतना चाहिये। जब ही ध्यान, बन्धे हुए जल की तरह स्थिर होता है।

भावार्थ- मन चंचल है सो आलंबन विना एक जगह स्थिर नहीं रहता सोई *आत्मानुशासन* में कहा है-

(छन्द शिखरिणी)
अनेकान्ती ही है फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें।
अरु वाचा पत्ते बहुत नय शाखा लसत ज्हां ॥
घनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसका।
रमावै विद्वान् या श्रुत तरु विषै चित्त कपिको ॥१७०॥

ध्यान के योग्य स्थान-

गिरिकंदरविवरसिलासयेसु मढमंदिरेसु सुण्णेसु।
णिद्दंसमसयणिज्जणठाणेसु झाणमब्भसह ॥९॥

गिरिकंदराविवरशिलाशयेषु मठमंदिरेषु शून्येषु।
निर्दंशमशक निर्जनस्थानेसु ध्यानमभ्यसत ॥९॥

(चौपाई)
गिरि कंदर विकसिल मठमांही, कोटर घर सुने बल ठांही
दंश मंश अरु नहि नर जावें, निरुपद्रव स्थानक में ध्यावे ॥९॥

अर्थ- पर्वत गुफा विल सिला तथा मठ मंदिरों में श्रेष्ठ वनों में डांस मच्छर रहित मनुष्य संचार रहित ऐसे स्थानों में ध्यान का अभ्यास करो।

भावार्थ- ध्यान के लिये ऐसा स्थान हो जहां ध्यान भंग के कारण बाधा उपद्रव की संभावना न हो।

ध्यान के भेद

झाणं चउप्पयारं भणंति वरजोइणो जियकसाया।
अट्टं तह य रउद्दं धम्मं तह सुक्कझाणं च ॥१०॥

ध्यानं चतु:प्रकारं भणंति वरयोगिनः जितकषायाः।
आर्तं तथा च रौद्रं धर्मं तथा शुक्लध्यानं च ॥१०॥

(चौपाई)
आर्तरौद्रध्यान दुठ होई, धर्म शुक्ल दोय शुभ होई।
ध्यान भेद यों यह है प्यारा, निष्कषाय मुनिवर कह सारा ॥१०॥

अर्थ- जिन्होंने कषायें जीत ली हैं ऐसे योगीश्वर आर्त-रौद्र, धर्म-शुक्ल च्यार प्रकार का ध्यान कहते हैं।

दुर्ध्यान वर्णन

तंबोलकुसमलेवणभूसणपियपुत्तचिंतणं अट्टं।
बंधणडहणवियारणमारणचिंता रउद्दंमि ॥११॥

तांबूल कुसुम लेपन भूषण प्रियपुत्रचिंतनं आर्तं।
बंधनदहनविदारणमारणचिंता रौद्रे ॥११॥

(चौपाई)
पान फूल लेप रू सुत माता, चिंतै सो हो आर्त हि ध्याता।
बंधन जालन चीरण घाता, चिंतै सो हो रौद्र हि ध्याता ॥११॥

अर्थ- पान, पुष्प, सुगंधिलेपन, भूषण, प्यास, पुत्रादिका चिंतवन आर्तध्यान है। और बांधना, जलाना, चीरना, मारना इत्यादि चिंतवन रौद्रध्यान है। अन्यत्र इस प्रकार कहा है-

अपनी प्रिय वस्तु जो धन कुटुम्बादि तिनके वियोग में उनके मिलने के लिये बारबार चिंतवन करना इष्टवियोग आर्तध्यान है। अपने को दुखदायी दरिद्रता शत्रु आदि के संयोग में वियोग के लिये चिंतवन करना अनिष्ट संयोग आर्तध्यान है। अपने शरीर में रोग इत्यादि होने पर दूर होने के लिये बारबार चिन्तवन करना पीड़ा चिंतवन आर्त ध्यान है और भावी सांसारिक सुखों के लिये चिंतवन करना निदान बंध आर्तध्यान है। आर्त अथवा दुख के लिये ध्यान अथवा चिंतवन सो आर्तध्यान, यह ध्यान छठे गुणस्थान तक होय है, निदान बन्ध के विना।

और रौद्रध्यान भी च्यार प्रकार है। (1) हिंसानन्द कहिये किसी जीव के बांधने मारने आदि में आनंद मानना या ऐसे विचार स्वयं करे। (2) मृषानंद कहिये झूठ में आनंद माने या खुद झूठे विचारादि करें। (3) चौर्यानंद कहिये चोरी में, चोरों की कथाओं में आनंद माने या स्वयं विचार करना आदि। (4) परिग्रहानंद कहिये धनधान्यादिक में आनंद माने या इसके विचार में रहना यह पंचम गुणस्थान तक होता है छठे में हो तो संयम छूट जाय यह दोनूं दुर्ध्यान पापबन्ध के कारण त्याज्य है।

धर्मध्यान, शुक्लध्यान-

सुत्तत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं।
गयसंकप्पवियप्पं सुक्कज्झाणा मुणेयव्वं ॥१२॥

सूत्रार्थमार्गणानां महाव्रतानां च भावना धर्मं।
गतसंकल्पविकल्पं शुक्लध्यानं मन्तव्यं ॥१२॥

(चौपाई)
सूत्र अर्थ मार्गण व्रत माना धर्मध्यानमें यह सब ध्याना।
नहिं संकल्प विकल्प जु होई, शुक्लध्यान जानो तुम सोई ॥१२॥

सूत्रार्थ कहिये द्वादशांगरूप जिनवाणी तथा ४ गति, ५ इंद्रिय, ६ काय, १५ योग, ३ वेद, २५ कषाय, ७ संयम, ८ ज्ञान, ४ दर्शन, ६ लेश्या, २ भव्याभव्य, ६ सम्यक्त्व, २ सैनी-असैनी, २ आहारक-अनाहारक ऐसे १४ मार्गणा, ५ महाव्रतों की २५ भावना तथा १४ गुणस्थान, १२ भावना, १० धर्म इत्यादि चिंतवन धर्मध्यान है। संकल्प विकल्प रहित आत्मचिंतवन शुक्लध्यान है। सो धर्मध्यान के भी च्यार भेद है। (1) जिनेन्द्र की आज्ञा का चिंतवन- आज्ञाविचय। (2) कर्मों के उदय किन किन कर्मों से कैसे कैसे आते हैं. उनसे क्या क्या कष्ट होते हैं इनसे छूटने के उपाय इत्यादि चिंतवन- अपाय विचय। (3) कर्मों के विपाक फल का विचार करना, किस जात के बंध का कैसा उदय होता है, तीव्र मंदादि विचारना- विपाक विचय। (4) तीन लोक के आकार का, समवशरणादि रचनाओं का परमेष्ठीवाचक मंत्रों की कमलादि आकृति में रचना का चिंतवना इत्यादि। संस्थान विचय। यह च्यार प्रकार धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान च्यार प्रकार है। (1) पृथकत्ववितर्क वीचार। जिसमें जुदा जुदा श्रुत का विचार नाम बदलना। भावार्थ- इस ध्यान में शब्द से शब्दांतर अर्थ से अर्थांतर, योग से योगांतर पलटते रहते हैं। यह ध्यान बारवें गुणस्थान तक होता है और मन वचन काय तीनों योगों में बदलता रहता हैं।

(2) एकत्ववितर्क अवीचार। ध्यान में शब्द से शब्दांतर अर्थ से अर्थांतर योग से योगांतर नहीं हो तो मोहनीय कर्म क्षीण होते ही जिस योग में जिस शब्द में जिस अर्थ पदार्थ में ध्यान था वहीं स्थिर हो जाता है। यह ध्यान तेरवें गुणस्थान तक रहता है।

(3) सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति। मन वचन काय की क्रिया को कर सूक्ष्म काय योग में स्थिर करना यह तेरवें गुणस्थान के अन्त में आयुकर्म के समान शेष अघातियाओं की स्थिति करने के लिये समुद्घात करने के बाद अथवा अघाति चतुष्क समान स्थितिवाले हों तो विना समुद्घात किये ही तेरवें के अन्त में सूक्ष्म काययोग में आते हैं अर्थात् योग निरोध के समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है।

(4) व्युपरत क्रियानिवृत्ति। तेरवें के लगते ही चौदवें अयोग गुणस्थान में जब कि श्वासोश्वासादि सूक्ष्मकाय योग की क्रिया भी रुक जाती है तब होता है।

किस ध्यान से कौन गति बंधती है सो कहते हैं-

तिरियगई अट्टेण णरयगई तह रउद्दझाणेण।
देवगई धम्मेणं सिवगइ तह सुक्कझाणेण ॥१३॥

तिर्यग्गतिः आर्तेन नरकगतिः तथा रौद्रध्यानेन।
देवगतिः धर्मेण शिवगतिस्तथा शुक्लध्यानेन ॥१३॥

(चौपाई)
हो तिर्यंच आर्त मृति होई, रौद्र थकी नारक गति सोई।
धर्मध्यान तें सुरगति जावै, शुक्लध्यानतें शिवगति पावै ॥१३॥

अर्थ- आर्तध्यान तैं जीव के तिर्यंच गति बन्धे है, रौद्रध्यान तें नरकगति, धर्मध्यान तें देवगति व शुक्ल ध्यान तें मोक्ष पावै है।

अट्टरउद्दं झाणं तिरिक्खणारययदुक्ख सयकरणं।
चइऊण कुणह धम्मं सुक्कज्झाणं च किं बहुणा ॥१४॥

आर्तरौद्रं ध्यानं तिर्यग्नारकदुःखशतकरणं।
त्यक्त्वा कुरु धर्मं शुक्लध्यानं च किंबहुना ॥१४॥

(चौपाई)
आर्तरौद्रतै दुर्गति पाओ, दुःखमयी तातै मत ध्याओ।
धर्म शुक्ल सुखकर ही जानो, तातैं ध्यान दोय मन ठानो ॥१४॥

अर्थ- आर्तध्यान तैं तिर्यंच गति होती है, रौद्रध्यान तें नरकगति होती है और वहां सैकड़ों दुःखों की प्राप्ति होती है इसलिये इन दोनों दुर्ध्यानों को छोड़कर सुखकारी धर्मध्यान को ग्रहण करो। बहुत कहा कहैं।
भावार्थ- आर्त रौद्रध्यान दुखकर हैं अतः हेय हैं। धर्मध्यान , शुक्लध्यान तैं स्वर्ग मोक्ष मिलता है अतः उपादेय है। धर्मध्यान भी संसार का कारण है परन्तु परम्परा से मुक्ति का कारण है, अतः उपादेय है।

अब धर्मध्यान की विधि कहते हैं-

सामाइयं जिणुत्तं पढमं काऊण परमभत्तीए।
चिंतह धम्महझाणं गलइ मलं जेण सहसत्ति ॥१५॥

सामायिकं जिनोक्तं प्रथमं कृत्वा परमभक्त्या।
चिंतय धर्मध्यानं गलति मलं येन सहसा इति ॥१५॥

(चौपाई)
प्रथम परम मुक्तियुत करहू, जिन भाषित सामायक [1] धरहू।
धर्मध्यान चिंतो मनमांही, तातैं पाप मैल झड़ जांही ॥ १५॥

अर्थ- प्रथम ही भगवान जिनेन्द्र की कही हुई सर्व सावद्य विरतिरूप अर्थात् संपूर्ण क्रियाओं के

1- सामायिक

त्यागपूर्वक सामायिक परमभक्ति के साथ ग्रहण करि धर्मध्यान का चिंतवन करै जिससे कि पापमल शीघ्र नाश हों।

सो ही पुरुषार्थसिद्धयुपाय में कहा है-

रागद्वेष को त्यागकर, सर्व साम्य अवधार।
तत्त्व प्राप्ति का मूल अति, सामायिक धरि सार॥
सामायिक युत जीवके, पाप त्याग ही होय।
चरण मोह के उदय भी, अतः महाव्रत जोय।
समता स्तुति अरु वंदना, प्रतिक्रम प्रत्याख्यान।
कायोत्सर्ग जु षट् करो, आवश्यक पहिचान॥

सुत्तत्थधम्ममग्गणवयगुत्तीसमिदिभावणाईणं।
जं कीरइ चिंतवणं धम्मज्झाणं च इह भणियं ॥१६॥

सूत्रस्थधर्ममार्गणव्रतगुप्तिसमितिभावनादीनां।
यत् क्रियते चिंतवनं धर्मध्यानं च इह भणितं ॥१६॥

(चौपाई)
सूत्र अर्थ अरु मार्गण जोई, गुप्ति समिति भावन है सोई।
इनका चिंतवन हो जिस मांही, धर्मध्यान मानो वह थाई ॥१६॥

अर्थ- सूत्रार्थ और १४ मार्गणा; उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य यह दश धर्म; अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ऐसे पाँच महाव्रत; मन, वचन, काय तीनों का वश में करना सो ३ गुप्ति; ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेपण, आलोकितपान भोजन यह पाँच समिति; अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ इन १२ भावनाओं का चिंतवन सो धर्मध्यान है। तथा और भी जिनोक्त वर्णन है। प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इनका विचारना इत्यादि सब धर्मध्यान हैं।

जीवाइ जे पयत्था कायव्वा ते जहट्ठिया चेव।
धम्मज्झाणं भणियं रायद्दोसे पमुत्तूणं ॥१७॥

जीवादयो ये पदार्था ध्यातव्याः ते यथास्थिताः चैव।
धर्मध्यानं भणितं रागद्वेषौ प्रमुच्य ॥१७॥

(चौपाई)
जीव अजीव तत्त्व सब ध्यावै, रागद्वेष तामें नहि लावै।
दृढ मन कर ध्यावै इम जोई, धर्मध्यान जानो यह सोई ॥१७॥

अर्थ- जीवादिक पदार्थ जैसे अवस्थित हैं तैसे रागद्वेष रहित उनके स्वरूप को विचारना सो भी धर्मध्यान है।

झाएह तिप्पयारं अरुहं कम्मिंधणाण णिद्दहणं।
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं गुरुपसाएण ॥१८॥

ध्यायत त्रिप्रकारं अर्हं कर्मेंधनानां निर्दहनं।
पिंडस्थं च पदस्थं रूपस्थं गुरुप्रसादेन ॥१८॥

(चौपाई)
पिंडस्थ रु पदस्थित भी जोहै, रूपस्थिति तीजा जो सोहै।
इम ये तीनों जानों ध्याना, कर्म जलानेमें परधाना ॥१८॥

अर्थ- पिंडस्थ कहिये प्रतिमारूप, पदस्थ कहिये मंत्ररूप, रूपस्थ कहिये समवशरण विभूति सहित जिनेन्द्र का चिंतवन, ऐसे तीन प्रकार कर्मों को भस्म करने वाला ध्यान है सो गुरु के प्रसाद से जानना।

पिंडस्थ ध्यान-

णियणाहिकमलमज्झे परिट्ठियं विप्फुरंतर वितेयं।
झाएह अरुहरूपं झाणं तं मुणह पिंडत्थं ॥१९॥

निजनाभिकमलमध्ये परिस्थितं विस्फुरद्रवितेजः।
ध्यायते अर्हद्रूपं ध्यानं तत् मन्यस्व पिंडस्थं ॥१९॥

(चौपाई)
सूर्य तेज जिम दीप्तिधारी , वीतराग अर्हत चितारी।
नाभिकमल स्थित चिंतै जोई, ध्यान पिंडस्थ जानिये सोई ॥१९॥

अर्थ- निज नाभिकमल में स्थित सूर्य समान तेज कांति धारी अरहंत की मूर्ति का चिंतवन करना सो पिंडस्थ ध्यान है।
भावार्थ- अपने नाभिकमल विषै भगवान अरहन्त की अत्यन्त तेजकर व्याप्त नासादृष्टि लगाये परिग्रह कामादि विकार रहित पद्मासन या खड्गासन परम वीतराग भावकर युक्त पद्मासन का ध्यान करै तो ऐसे स्वरूप विचारै। बांय पांव पर दक्षिण पांव स्थापन किये उस पर वाम हस्त पर दक्षिण हस्त धरै, नासादृष्टि धरे, निश्चल अत्यन्त वीतराग स्वरूप निर्लेप निर्मल रूप का चिंतवन करै और खड्गासन मूर्ति का ध्यान करै तो एडी में तो परस्पर च्यार अंगुल का अन्तराल और दोनों भुजाएं लंबायमान अरतोंके[1] हाथों से च्यार अंगुल का अन्तर,नहीं ज्यादा ऊंचे, नहीं ज्यादा नीचे है गर्दन मस्तक, नासिका पर दृष्टि, ओष्ट नहीं अधिक मुद्रित नहीं अधिक खुले, वीतराग ध्यानस्थ ऐसे अर्हत्परमेष्ठी को अपने नाभिकमल में स्थापित कर ध्यान करै।

झायह णियकुरमज्झे भालयले हिययकंठदेसम्मि।

1- यह शब्द पुरानी छपी हुई प्रति की प्राप्त हुई 2 pdf में इस प्रकार था अरतोंके [illegible] *यह क्या लिखा है एवं इसका क्या अर्थ है वह हमारे समझ में नहीं आया।*

जिणरुवं रवितेयं पिंडत्थं मुणह झाणमिणं ॥२०॥

ध्यायत निजकुरमध्ये भालतले हृदयकण्ठदेशे।
जिनरूपं रवितेजः पिंडस्थं मन्यस्व ध्यानमिदं ॥२०॥

(चौपाई)
कंठ ललाट और कर मांहि, इन स्थानों में कमल रचा ही।
यथाजात जिनवर छवि ध्यावै, पिंडस्थिति सोहू नर पावै ॥२०॥

अर्थ- सूर्य तेज समान दीप्तिमान जिन प्रतिमा तुल्य जिनेंद्र का रूप ललाट में अथवा कंठ में हाथ में यथाजात रूप अर्थात् माता के उदर से निकला जिस रूप नग्न, इन स्थानों में ध्यान में चितवन करै सो भी पिंडस्थ ध्यान है।

पदस्थ ध्यान का वर्णन-

अट्ठमवग्गचउत्थं सत्तय वग्गस्स वीयवण्णेण।
अक्कंतमुवरि सुण्णं सुसंयुयं मुणह तं तच्चं ॥२१॥

अष्टमवर्गचतुर्थं सप्तमवर्गस्य द्वितीयवर्णेन।
आक्रांतमुपरि शून्यं सुसंयुतं मन्यस्व तत्त्वं ॥२१॥

(चौपाई)
अष्टम वर्ग चतुर्थम लेओ, सप्तमका दूजा युत झेओ।
ई मात्रा युत घरहू बिंदू, हो पदस्थ ह्रीँ युत बिंदु ॥२१॥

अर्थ- आठवें वर्ग का चौथा अक्षर सातवें वर्ग का दूसरा अक्षर से आक्रांत ऊपर शून्य बीज जो ईकार इनसे युक्त का ध्यान करो अर्थात् आठवां वर्ग *श ष स ह* तामें चोथा (ह) सातवां वर्ग *य र ल व* जिसका द्वितीय अक्षर (र) करि दबावे युक्त करै तब ह्र तिसमें बीजाक्षर ई स्वर बिंदुयुक्त किये चंद्रयुक्त (ह्रीँ) इस मंत्र का ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

एयं च पंच सत्तय पणतीसा जहकमेण सियवण्णा।
झायह पयत्थझाणं उवइट्ठं जोयजुत्तेहिं ॥२२॥

एकं च पंच सप्त पंचत्रिंशत् यथाक्रमेण सितवर्णाः।
ध्यायत पदस्थध्यानं उपदिष्टं योगयुक्तैः ॥२२॥

(चौपाई)
एक पाँच वर्णी जू होई, सात और पैतीस हु सोई।
ध्यान पदस्थ हि भेद पिछानो, आतमध्यानी कहे *यूँ मानो ॥२२॥*

अर्थ- एक पाँच सात पैंतीस अक्षर वाले अध्यात्मध्यानी योगियों करि कहे हुए मंत्र यथाक्रम सें ध्याना पदस्थ ध्यान है।

भावार्थ- एकाक्षरी ॐ अथवा ह्रीँ । पंचाक्षरी अर्हद्भ्यो नमः अथवा अ सि आ उ सा अथवा नमः सिद्धेभ्यः। सप्ताक्षरी णमो अरहन्ताणं , अर्हत्सिद्धेभ्यो नमः ; पैतीस अक्षरी- णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं जो कि यह पंचपरमेष्ठी के वाचक हैं तिनका ध्यान करना पदस्थ ध्यान है। अरहन्त, अशरीर [सिद्ध], आचार्य, उपाध्याय, साधु इनके आदि अक्षर से अ सि आ उ सा पञ्चपरमेष्ठी वाचक है और अरहन्त, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय, मुनि इनके प्रथमाक्षर अ अ आ उ म् इनके व्याकरण संधि साधने तैं अ अ का आ होता है फिर आ आ में अगला अक्षर लोप करने पर आ और उ की संधि ओ और म् ॐ पंच परमेष्ठी वाचक है और मंत्र स्पष्ट पंचपरमेष्ठी वाचक है ही।

मुणिसंखा पंचगुणा खणवाई तह य पवणगयणंता।
एदे य धवलवण्णा कायव्वा झाणमग्गेण ॥२३॥

मुनिसंख्या पंचगुणा .... तथा च पवनगतानंताः।
एते च धवलवर्णा धातव्याः ध्यानमार्गेण ॥२३॥

(चौपाई)
पाँच सात गुण ते जो पावै, पाँच पाँच गुण इक द्वय ध्यावै।
धवल रंग चितन जो ध्यावें, ध्यान मार्ग है यह सब सारे ॥२३॥

अर्थ- सात सें गुणित पाँच पैतीस अक्षरी उपरोक्त णमोकार मंत्र पाँच से गुणित पाँच पचीस अक्षरी ॐ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः[1] और १ अक्षरी ॐ दो अक्षरी सिद्ध ऐसे भी ध्यान मार्ग सें ध्यान करने से पदस्थ ध्यान होता है।

सो ही द्रव्य संग्रह में नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति ने कहा है।

पणतीस-सोल-छप्पण, चदु-दुग-मेगं च जवह ज्झाएह।
परमेट्ठीवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण [2] ॥49॥

३५-१६-६-५-४-२-१ एक अक्षर रूप मंत्र पंचपरमेष्ठी वाचक है तिनका ध्यान करै। और भी गुरु उपदेशित ध्यान करै, षोड़साक्षरी अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः षड़ाक्षरी ॐ नमः सिद्धेभ्यः। चतुरक्षरी ॐ नमोस्तु अथवा अरहन्त, शेष ऊपर कह चुके।

णिसिऊण पंचवण्णा पंचसु कमलेसु पंचठाणेसु।
झाएह जहकमेणं पयत्थझाणं इमं भणियं ॥२४॥

निश्रुत्वा पंचवर्णान् पंचसु कमलेसु पंचस्थानेषु।
ध्यायत यथाक्रमेण पदस्थध्यानं इद भणितं ॥२४॥

1- इस मंत्र में शायद 23 अक्षर ही है 25 अक्षरी होने के लिए 2 अक्षर कम है।

2- इस ग्रंथ (ज्ञानसार टीका) की पुरानी प्रति में गुरूवएसेण के आगे एक “णिरदो” शब्द भी हैं किंतु द्रव्य संग्रह में यह शब्द नही मिला।

(चौपाई)

मस्तक मुख ललाट उर मांही, नाभियुक्त पाँचों स्थल मांही।
मंत्र कल्पना करके ध्यावै, ध्यान पदस्थ यों भी नर पावै ॥२४॥

अर्थ- पाँचों वर्णों को क्रम से मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि में पाँच वर्ण के कमल रचकर उनमें स्थापित कर ध्यान करना सो भी पदस्थ ध्यान कहा है।
भावार्थ- णमोकार मंत्र के पाँच पद को वा पाँच अक्षरी मंत्र को पाँचों स्थान पाँच वर्ण के कमल रच उनमें स्थापित कर ध्यान करना भी पदस्थ ध्यान है।

सत्तक्खरं च मंतं सत्तसु ठाणेसु णिससुसयवण्णं।
सिद्धसरूपं च सिरे एयं च पयत्थझाणुत्ति ॥२५॥

सप्ताक्षरं च मंत्रं सप्तसु स्थानेषु .... ।
सिद्धस्वरूपं शिरसि एतच्च पदस्थध्यानमिति ॥२५॥

(चौपाई)

कंठ हाथ युत सातों स्थल में, वर्ण सातके सात कमलमें।
सप्ताक्षरी मंत्र जो भजिहैं, धर पदस्थ कर्म मल तजिहैं ॥२५॥

अर्थ- सप्ताक्षरी मंत्र को मस्तक, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि इन सात स्थानों में सात रंग के कमल रच उनमें क्रम से सातों अक्षरों को स्थापन करै और मस्तक पर सिद्ध स्वरूप के साथ ध्यान करै सो भी पदस्थ ध्यान है।

अट्ठदलकमलमज्झे अरुहं वेढेह परमवीयेहिं।
पत्तेसु तहय वण्णा दलंतरे सत्तवण्णा य ॥२६॥
गणहरवलयेण पुणो मायाविएण धरयलक्कंतं।
जं जं इच्छह कम्मं सिज्झइ तं तं खणद्धेण ॥२७॥

अष्टदलकमलमध्ये अर्हं वेष्टय परमबीजैः।
पत्रेषु तथा च वर्णा दलांतरे सप्तवर्णाश्च ॥२६॥
गणधरवलयेन पुनः मायाबीजेन धरातलाक्रांतं।
यद्यत् इच्छति कर्म सिध्यति तत्तत् क्षणार्धेन ॥२७॥

(चौपाई)

अर्हं बीच कणीमें धारै, पत्रोंमें बीजाक्षर सारै।
मंत्र सप्तवर्णी दल बारै, आगे और सुणो विस्तारै ॥२६॥
गणधर वेष्टित फिर सो होई, माया बीज मयी हू सोई।
दावै पृथ्वी मंडल से ही, अर्द्ध पलक में सिद्धी लेही ॥२७॥

अर्थ- अष्टदल कमल के बीच में अर्हं लिखकर बीजाक्षरों को पत्तों में लिखें और सप्ताक्षरी मंत्र को वेष्टित करै फिर गणधरों को वलयाकार वेष्टित करे फिर मायाबीजाक्षरों से वेष्टित करै तो

क्षणार्द्ध में सर्व कार्य सिद्ध हो। (सूचना) मायाबीज, बीजाक्षर पृथ्वीमंडल यह मंत्रशास्त्र की संज्ञा है इसलिये इन अक्षरों का खुलासा नहीं किया गया। इसलिये वाचकगण क्षमा करैं। यह गणधरवलय यंत्र है।

रूपस्थ ध्यान-

घण घायिकम्ममहणो अइसइवरपाडिहेर संयुत्तो।
झाएह धवलवण्णो अरहंतो समवसरणत्थो ॥२८॥

घनघातिकर्ममथनः अतिशयवरप्रातिहार्यसंयुक्तः।
ध्यायत धवलवर्णो अरहंतो समवसरणस्थः ॥२८॥

(चौपाई)
घाती कर्म विना जिनराई, अतिशय प्रातिहार्य युत सांई।
समवसरण में स्थित को ध्यावै, सो रूपस्थ सु ध्यान कहावै ॥२८॥

अर्थ- सघन घातिया कर्म विनाशकर चौंतिस अतिशय, आठ प्रातिहार्य सहित समवसरण में विराजमान धवलवर्ण अर्हत् परमेष्ठी का चित्त में ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान है। अन्य ग्रन्थों में रूपातीत ध्यान का भी वर्णन किया है उसमें अशरीर, अमूर्तीक, ज्ञान, दर्शन, चैतन्य इत्यादि सिद्ध स्वरुप का ध्यान सो रूपातीत ध्यान बताया है।

अप्पा तिविहपयारो बहिरप्पा अंतरप्प परमप्पा।
जाणह ताण सरूवं गुरुउवदेसेण किंबहुणा ॥२९॥

आत्मा त्रिविधप्रकारो बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा।
जानीहि तेषां स्वरूपं गुरुपदेशेन किंबहुना ॥२९॥

(चौपाई)
अंतरात्म बहिरात्म दोई, तीजा परमातम भी होई।
तीनोंका अब वर्णन यों है, समझ देशना हितकर जो है ॥२९॥

अर्थ- बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा ऐसे तीन प्रकार के आत्मा हैं। इनका स्वरूप गुरु उपदेश से अच्छी तरह समझो। और बहुत उपदेश से क्या?

मयमोहमाणसहिओ रायाद्दोसेहिं णिच्च संतत्तो।
विसएसु तहा गिद्धो बहिरप्पा भण्णए एसो ॥३०॥

मदमोहमानसहितः रागद्वेषैः नित्यं संतप्तः।
विषयेषु तथा गृद्धः बहिरात्मा भण्यते एषः ॥३०॥

(चौपाई)
मोह गर्व मायायुत होई, राग द्वेष कर युत जो होई।
विषयनिमें बहु राचै जोई, बहिरातम होता है वोई ॥३०॥

अर्थ- मद, मोह (मिथ्यात्व), मान, रागद्वेष से सदा व्याप्त विषयों में सदा आसक्त ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा है।

भावार्थ- आठ प्रकार के मदयुक्त, पंचप्रकार मिथ्यात्वयुक्त, अनंतानुबंधी राग, अनन्तानुबन्धी द्वेष, मायावी, अत्यन्त विषयलोलुपी जीव बहिरात्मा है। यहां मोह शब्द सें मिथ्यात्व ग्रहण किया है, क्योंकि चारित्रमोहनीय की प्रकृति मान मायादि पृथक् बताई है।

धम्मज्झाणं झायदि दंसणणाणेसु परिणदो णिच्चं।
सो भणइ अंतरप्पा लक्खिज्जइ णाणवंतेहिं ॥३१॥

धर्मध्यानं ध्यायति दर्शनज्ञानयोः परिणतः नित्यं।
सः भण्यते अंतरात्मा लक्ष्यते ज्ञानवद्भिः ॥३१॥

(चौपाई)
धर्म धरै दशविध है जोई, सम्यग्दर्शन ज्ञान युत होई।
आत्मज्ञानयुत हैं जो कोई, अंतरात्म जानों वह होई ॥३१॥

अर्थ- धर्म ध्यान को ध्याता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में सदा परिणति रखता है उसको ज्ञानवान अन्तरात्मा कहते हैं।

भावार्थ- पहले कहे हुए च्यार प्रकार धर्मध्यान का चिन्तवन करै। निःशंकितादि आठ अंग सहित आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन रहित शुद्ध तत्त्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। संशय विभ्रम मोह रहित अष्टांग सम्यग्ज्ञान का धारी सो सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है। सोई *पुरुषार्थसिद्ध्युपाय* में कहा है-

अष्ट अंग का स्वरूप-

(दोहा)
जिनमत वस्तु समूहको, अनेकांत दरशाय।
किमु सत्य असत्य है, ऐसें नहिं शंकाय ॥२३॥
इस भवके विभवादि की, परभव चक्री आदि।
एकांती पर समय भी, इच्छत नांहि प्रमादि ॥२४॥
क्षुधा तृषा शीतादि जो, नानाविध है भाव।
विष्टा आदि पदार्थमें, विचिकित्सा न लगाव ॥२५॥
शास्त्राभास सु लोक में, समय देवता भास।
इनमें तत्त्व विचार कर, मूरख दृष्टि विनाश ॥२६॥
उपगूहन गुणके लिये, मार्दवादिको धार।
चेतन धर्म बढाइये, ढकि परदोष विचार ॥२७॥
कामरु क्रोध मदादि से, न्याय मार्ग चल जांहि।
स्थिति करना निज धर्म में, सो थितिकरण कहांहि ॥२८॥
शिव-सुख कारण दयामय, धर्म अहिंसा धार।
अरू सहधर्मिनके विषैं, वत्सलता उर धार ॥२९॥

रत्नत्रय के तेजसे, चेतन करहु प्रकाश।
पूजन दान तपादिसे, धर्म प्रभाव विकाश ॥३०॥

ऐसे अष्ट अंग युक्त सम्यग्दृष्टि होता है सो ही रत्नकरंड- श्रावकाचार में भी कहा है-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

अर्थ- तीन मूढ़ता रहित, आठ अंग सहित, आठ मद रहित, सत्यार्थ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान सम्यग्दर्शन हैं जिसमें आठ अंग का स्वरूप ऊपर बताया

अब तीन मूढ़ता को कहते हैं-

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अर्थ- नदी समुद्र में स्नान करना, वालू रेत पत्थरों का ढेर करना, पर्वत से गिरना, अग्नि प्रवेश, इनमें धर्म समझना लोकमूढ़ता कहलाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

अर्थ- भला होने की कामना से राग द्वेष से मैले देवताओं की जो उपासना है वह देवमूढ़ता कही है।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥२४॥

अर्थ- परिग्रह आरम्भ और हिंसा सहित संसार चक्र में पड़े हुए पाखंडियों का सत्कार करना पाखंडमूढ़ता है।

भावार्थ- परिग्रह, आरंभी स्वयं संसार में फंसे हुए [होने] से दूसरे का उद्धार क्या करेंगे?

सच्चे देव के लक्षण-

क्षुत्पिपासा जरातंकजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥६॥

अर्थ- क्षुधा प्यास बुढापा रोग जन्म मरण भय मान राग द्वेष और मोह यह जिनके नहीं हैं और च से चिंता पसीना और ग्लानि हास्य कामादि जिनके नहीं हैं सो आप्त अर्थात् सच्चा देव कहा जाता है।

सत्यार्थ शास्त्र का लक्षण-

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥

अर्थ- ऊपर कहे हुए लक्षणवाले आप्त द्वारा कहा हो, वादी प्रतिवादी से अखंडित जो कि प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण से अबाधित, सत्यार्थ तत्त्वों का उपदेशवाला, प्राणीमात्र का हितकारी, कुमार्ग का खंडन करने वाला शास्त्र होता है।

सत्यार्थ गुरु का लक्षण-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥१०॥

अर्थ- विषयवासना रहित, आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान और तप में आसक्त ऐसा वह तपस्वी सराहनीय है। ऐसे सत्यार्थ आप्त आगम गुरु श्रद्धान पूर्वक पूजनीय है

आठ मद

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥
स्मयेन यो न्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अर्थ- ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर इन आठों के आश्रित घमंड करना मद है। जो पुरुष घमंड से अन्य धर्मात्माओं का अपमान करता है वह अपने धर्म का अपमान करता है। क्योंकि धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं होता। ऐसे आठ अंग सहित और आठ मद तीन मूढ़ता रहित, सच्चे देव शास्त्र गुरु का और इनके द्वारा उपदेशित सत्यार्थ तत्त्व का श्रद्धान कर आत्मस्वरुप को प्राप्त होना ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व सहित जीव अन्तरात्मा है सम्यग्ज्ञान के लिये *पुरुषार्थसिद्ध्युपाय* में कहा है।

(दोहा)

सम्यक्ती निज हितेच्छ, निर्मल सम्यग्ज्ञान।
आम्नाय अरु युक्तितैं, भजै तजै कुज्ञान ॥३१॥
दर्शन सहभावी तदपि, पृथ गारा धन इष्ट।
इनमें लक्षण-भेदतैं, जुदा ज्ञान उपदिष्ट ॥३२॥
कारज सम्यग्ज्ञान है, कारण सम्यग्दर्श।
तातैं ज्ञान अराधना, दर्शन अन्त प्रदर्श ॥३३॥
दीपक और प्रकाश जिम, एक काल उत्पाद।
तिम दर्शन अरु ज्ञानका, कारण कारज साध ॥३४॥
सदनेकान्ती तत्त्वमें करहु अध्यवसाय।
तजि संशय भ्रम मोहको, आतमरूप लखाय ॥३५॥
शब्दार्थो भय काल नति, सोपधान बहुमान।
युक्त अनिह्नव आठ युत, धारो सम्यग्ज्ञान ॥३६॥

ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान युक्त जीव अन्तरात्मा है।

परमात्मा का स्वरूप-

दुविहा तह परमप्पा सयलो तह णिक्कलोत्ति णायव्वो।
सयलो अरुहसरूवो सिद्धो पुणु णिक्कलो भणिओ ॥३२॥

द्विविधः तथा परमात्मा सकलः तथा निष्कलः इति ज्ञातव्यः।
सकलो अर्हत्स्वरूपः सिद्धः पुनः निष्कलः भणितः ॥३२॥

(चौपाई)
सकल शरीर सहित अरहंता, निकल सिद्ध हों तन विनशंता।
यह दोनों परमातम जानो, है कृतकृत्य नहीं कछु छानो ॥३२॥

अर्थ- सो परमात्मा सकल कहिये शरीर सहित और निकल कहिये शरीर रहित दो प्रकार हैं। सकल परमात्मा घातिया कर्म चतुष्टय रहित अनन्तदर्शन ,ज्ञान, सुख, वीर्य चतुष्टय युक्त समवसरण लक्ष्मी सहित अरहन्त है और निकल परमात्मा शरीर रहित चरम शरीर तै कुछ न्यून और अनंत गुणों का पुंज अतिन्द्रिय सुखयुक्त ऊर्ध्वगमन स्वभाव तै सिद्धालय में यावत् गमन सहकारी धर्मद्रव्य है तहां लोक के अन्त ऊर्ध्वभाग में निश्चल स्थित हैं। उत्पाद व्यय-ध्रौव्य युक्त सुख सत्ता अवबोध चेतन इन चार प्राणों युक्त जीवत्व गुण सहित हैं।

जरमरणजम्मरहिओ कम्मविहीणो विमुक्कवावारो।
चउगइगमणागमणो णिरंजणो णिरुवमो सिद्धो ॥३३॥

जरामरणजन्मरहितः कर्मविहीनः विमुक्तव्यापारः।
चतुर्गतिगमनागमनः निरंजनो निरूपमः सिद्धः ॥३३॥

(चौपाई)

जन्म जरा मृति रोग विनाशी, कर्म क्रिया विन शिवके वासी।
निश्चलरूप निरंजन सोई, गमनागमन रहा नहिं कोई ॥३३॥

अर्थ- बुढ़ापा मरण जन्मरहित, कर्मरहित, व्यापार रहित, गमनागमन रहित, निरंजन, रूप रहित सिद्ध है सो ही परमात्मा हैं।

परमट्ठगुणेहिं जुदो अणंतगुणभायणो णिरालंबो।
णिच्छेओ णिब्भेओ अणंदिदो मुणह परमप्पा ॥३४॥

परमाष्टगुणैः युक्तः अनंतगुणभाजनः निरालंबः।
निश्छेदः निर्भेदः आनंदितो मन्यस्व परमात्मा ॥३४॥

(चौपाई)
परमारथ गुण आठों धारै, गुण अनंत युत शुद्ध निहारै।
निर आलंब सुखी स्वाधीनी, ऐसे परमातम लय लीनी ॥३४॥

अर्थ- सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व [और अवगाहनत्व] इन आठ परमार्थ गुण सहित और अनेक गुणों युक्त निःसहाय और नित्य आनन्दमयी सिद्ध परमात्मा जानो।

इस परमात्मा के ध्यान का स्वरूप-

अप्पा दिणयरतेओ णाणमओ णाहिकमलमज्झत्थो।
णिच्चिंतो णिद्दंदो झायव्वो झाणजुत्तीए ॥३५॥

आत्मा दिनकरतेजाः ज्ञानमयो नाभिकमलमध्यस्थः।
निश्चिंतो निर्द्वंद्वः ध्यातव्यः ध्यानयुक्त्या ॥३५॥

(चौपाई)
सूर्य तेज जिम ज्ञान प्ररूपी, नाभिकमल स्थित चैत्य स्वरूपी।
गत चिंता निर्द्वंद अती है, परमातमको ध्याय यती है ॥३५॥

अर्थ- सूर्य समान ज्ञान तेज युक्त, चिंता रहित, कर्मद्वंदरहित ऐसे परमात्मा को नाभिकमल में स्थापित करि योगीश्वर ध्यान करै।

पाहाणम्मि सुवण्णं कट्ठे अग्गी विणा पओएहिं।
ण जहा दीसंति इमो झाणेण विणा तहा अप्पा ॥३६॥

पाषाणे सुवर्णं काष्ठे अग्निः विना प्रयोगैः।
न यथा दृश्यंते इमानि ध्यानेन विना तथा आत्मा ॥३६॥

(चौपाई)
पत्थर में जैसे है सोना, यथा काष्ठ में अग्नि होना।
विना प्रयोगके नांहीं लखिए, ध्यान विना किम आत्म परखिये ॥३६॥

अर्थ- जैसे पाषाण में से सुवर्ण, काष्ट में अग्नि विना प्रयोग के नहीं दीखते तैसें ध्यान विना आत्मा के दर्शन नहीं होते। ध्यान से ही आत्मा का शुद्ध प्रतिभास होता है।

किं बहुणा सालंबं झाणं परमत्थएण णाऊणं।
परिहरह कुणह पच्छा झाणब्भासं णिरालंबं ॥३७॥

किं बहुना सालंबं ध्यानं परमार्थेन ज्ञात्वा।
परिहर कुरू पश्चात् ध्यानाभ्यासं निरालंबं ॥३७॥

(चौपाई)
ध्यान अलंबनको हू त्यागो, निरालंब ध्यान में लागो।
बहु प्रलाप से क्या है योगी, निरालंबसे सिद्धि होगी ॥३७॥

अर्थ- बहुत कथन से क्या परमार्थरूप से आलंबन ध्यान का भी त्याग कर निरालंब ध्यान का अभ्यास करो।

भावार्थ- आलंब ध्यान तो ध्यान का अभ्यास बढ़ाने के लिये है पुण्य बंध का कारण है। पाप क्रियाओं से मन को रोक पुण्य क्रियाओं में लगाने के लिये हैं। फिर अभ्यास करते-करते पुण्यानुबंधी धर्मध्यान को छोड़ कर्मनिर्जरा का कारण निरालंब शुक्ल ध्यान में लगाना परमार्थ ध्यान है।

जह पढमं तह विदियं तदियं णिस्सेणियव्व चडमाणो।
पावइ समुच्चठाणं तह जोई थूलदो सुण्णं ॥ ३८॥

यथा प्रथमं तथा द्वितीयं तृतीयं निश्रेणिकायां चटमानः।
प्राप्तोति समुच्चस्थानं तथा योगी स्थूलतः शून्यं ॥३८॥

(चौपाई)
एक दोय त्रयको क्रम रीती, उच्च स्थान पावै रिपु जीती।
तैसे स्थूल ध्यानको ध्याता, क्रमसे शून्य ध्यानको पाता ॥३८॥

अर्थ- जैसे क्रम से एक दो तीन इत्यादि शत्रुओं को जीत सर्व साम्राज्य का स्वामी होता है उस ही प्रकार आलंबन युक्त जो स्थूल ध्यान उसको ध्याता योगी क्रम से शून्य ध्यान को भी ध्याने लगता है।

सुण्णज्झाणे णिरओ चइगयणिस्सेसकरणवावारो।
परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं ॥३९॥

शून्यध्याने निरतः त्यक्तनिःशेषकरणव्यापारः।
परिरुद्धचित्तप्रसरः प्राप्तोति योगी परं स्थानं ॥३९॥

(चौपाई)
शून्य ध्यान में रत यह योगी, दूर करैं सब क्रिया त्रियोगी।
रोकत चित्त वेग सब सारा, परम स्थान पावै भव पारा ॥३९॥

अर्थ- संपूर्ण इन्द्रिय व्यापार को रोक कर अपने निज चित्त में स्थिर हो चित्त के वेग को रोकता हुआ शून्य ध्यान रत योगी परम स्थान को प्राप्त कर लेता है।

अन्य अज्ञानियों द्वारा अन्यथा माने हुए शून्य ध्यान का निषेध-

सुण्णं च विविहभेयं भणियं अ बुहेहिं गयणमवियप्पं।
तह दव्वपज्जभावं महहयारं च सिर रहियं ॥४०॥

शून्यं च विविधभेदं भणितं च बुधैः गगनमविकल्पं।
तथा द्रव्यपर्ययभावं .... ॥४०॥

(चौपाई)

विन पर्याय द्रव्य को ध्यानो, तेज रहित आकाश बखानो।
ऐसे गगन ध्यानको कोई, मूर्ख अनेक शून्य कह सोई ॥४०॥

अर्थ- कितने ही अज्ञानी बहुत प्रकार का बतलाते हैं जैसे द्रव्य पर्याय ज्ञानरहित तेजो विकार रहित कल्पना रहित आकाश तत्त्व का ध्यान करना शून्य ध्यान होता है।

सत्यार्थ शून्य ध्यान का वर्णन करते हैं-

रायाईहिं विमुक्कं गयमोहं तत्तपरिणदं णाणं।
जिणसासणम्मि भणियं सुण्णं इय एरिसं मुणह ॥४१॥

रागादिभिः विमुक्तं गतमोहं तत्त्वपरिणतं ज्ञानं
जिनशासने भणितं शून्यं इदमीदृशं मनुतं ॥४१॥

(चौपाई)
राग द्वेष मोह तज ध्यावै, परिणति तत्त्वरूप ही पावै।
जिनमत वर्णित सो ही जानो ,शून्य ध्यान ताको पहिचानो ॥४१॥

अर्थ- राग द्वेष मोह कहिये मिथ्यात्व रहित तत्त्व परिणति रूप ध्यान ही जिनमत में शून्य ध्यान कहा है।

इंदियविसयादीदं अमंततंतं अधेयधारणयं।
णहसरिसंपि ण गयणं तं सुण्णं केवलं णाणं ॥४२॥

इंद्रियविषयातीतं अमंत्रतंत्रं अध्येयधारणाकं।
नभः सदृशमपि न गगनं तत् शून्यं केवलं ज्ञानं ॥४२॥

(चौपाई)
इन्द्रिय विषयहू जामें नाही, मंत्र स्मर्ण नहिं तामधि पाही।
ध्येय धारणा स्मर्ण न तामें, केवल आत्मज्ञान ही तामें ॥४२॥

अर्थ- जिस ध्यान में न तो इन्द्रिय विषय है न मंत्र स्मरण है। न कोई ध्यान करने की वस्तु है, न कोई धारणा स्मरण है, केवलज्ञान परिणति ही है सो शून्य ध्यान है।

णाहं कस्सवि तणओ ण को वि मे अत्थि अहं च एगागी।
इय सुण्णझाणणाणे लहेइ जोई परं ठाणं ॥४३॥

नाहं कस्यापि तनयः न कोपि मे अस्ति अहं च एकाकी।
इति शून्यध्यानज्ञाने लभते योगी परं स्थानं ॥४३॥

(चौपाई)
न मैं किसी का, न मेरा कोई, मैं एकाकी।
पाता है योगी परमस्थान, भीतर शून्य ज्ञान ध्यान ॥४३॥

अर्थ- न तो मैं किसी का पुत्र हूँ और न मेरा कोई पुत्र है। मैं तो सिर्फ अकेला हूँ। इस प्रकार विचार करके योगी शून्य ज्ञान ध्यान में लीन होकर परमस्थान- श्री सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

मणवयणकायमच्छरममत्ततणुधणकणाइ सुण्णोऽहं।
इय सुण्णझाणजुत्तो णो लिप्पइ पुण्णपावेण ॥४४॥

मनवचनकायमत्सरममत्वतनुधनकनादिभिः शून्योहं।
इति शून्यध्यानयुक्तः न लिप्यते पुण्यपापेन ॥४४॥

(चौपाई)
मन वच तन मत्सर माया, ममता मोह क्रोध सुत काया।
जुदा आत्म इनतें जब ध्यावै, पाप पुन्य बंधने नहि पावै ॥४४॥

अर्थ- मन, वचन, तन, मत्सर, माया, ममता, मोह, क्रोध, पुत्र, काया इन सबसे आत्मा को अलग ध्यावे तो योगी पाप पुण्य से नहीं लिपता।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदणगुणोहमेकोऽहं।
इय झायंतो जोई पावइ परमप्पयं ठाणं ॥४५॥

शुद्धात्मा तनुमात्रः ज्ञानी चेतनगुणः अहम् एकः अहं
इति ध्यायन् योगी प्राप्तोति परमात्मकं स्थानं ॥४५॥

(चौपाई)
मैं शुद्धातम ज्ञानमयी हूँ , चित्स्वरूप एक मैं ही हूँ।
ऐसे ध्याता योगी पावै, परम स्थान सुखिया हो जावै ॥४५॥

अर्थ- मैं शरीरप्रमाण शुद्ध आत्मा हूँ, ज्ञानी हूँ, चैतन्य गुण का धारी हूँ, एकाकी हूँ, इस प्रकार ध्यान करने वाला योगी परम पद को प्राप्त होता है।

भमिदे मणुवावारे भमंति भूयाइ तेसु रायादी।
ताण विरामे विरमदि सुचिरं अप्पा सरूवम्मि ॥४६॥

भ्रांतेषु मनोव्यापारेषु भ्रमंति भूतानि तेषु रागादिषु।
तेषां विरामे विरमति सुचिरं आत्मस्वरूपे ॥४६॥

(चौपाई)
मन चर्याके भ्रमते होवै, राग द्वेष शुचि खोवै
मन के रोके सोहू रुकै हैं, तब आतम थिरता प्रगटै हैं ॥४६॥

अर्थ- मन का व्यापार स्थान स्थान भ्रमण करता है तो उनमें रागादि भाव होते हैं और जब मन का व्यापार रुक जाता है तो आत्मा निज स्वरूप में ठहरता है।

भावार्थ- जब मन जगह जगह अनेक वस्तुओं में भटकता है तो इष्ट में राग अनिष्ट में द्वेष होता ही है और [जब] मनोव्यापार रुक जाता है बाह्य पदार्थों में नहीं भटकता तो फिर रागादि किसमें हो क्योंकि कोई पदार्थ इन्द्रिय विषय में इष्ट है, कोई अनिष्ट है। उनका निमित्त पाकर आत्मा के साथ बंधे हुए कषाय कर्म उदय आते ही है। क्योंकि बाह्य पदार्थ रागद्वेष के नोकर्म हैं। इसलिये मन को इन्द्रिय विषयों से रोकने के लिये *आत्मानुशासन* में ऐसे कहा है-

(छन्द शिखरिणी)
अनेकांती ही हैं फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें,
जहां वाणी पत्ते बहुत नय शाखा लसत है।
घनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसकी,
रमावै विद्वान् या श्रुततरुविषै चित्त कपिको ॥१७०॥

प्रथम अवस्था में चित्त बिना आलंबन ठहरै नहीं इसलिये श्रुत- ज्ञान में चित्त को लगावे, जिससे कि इन्द्रिय विषयों से चित्त रुक जाये तो पाप बंध का संवर होवे और पुण्यबंध का कारण धर्मध्यान रहै, ऐसे अभ्यास करते करते निरालंब ध्यान का अभ्यास हो जाय तब शुक्ल ध्यान होय है। वह ही शून्य ध्यान है। जो कि श्रेणी आरोहणकाल में होता है वह कर्म निर्जरा का कारण है।

अब्भंतरा य किच्चा बहिरत्थसुहाइ कुणह सुण्णतणुं।
णिच्चिंतो तह हंसो पुंसो पुणु केवली होई ॥४७॥

अभ्यंतरं च कृत्वा बहिरर्थसुखानि कुरु शून्यतनुं।
निश्चिंतस्तथा हंसः पुरुषः पुनः केवली भवति ॥४७॥

(चौपाई)
बाह्य सुखों में हो मध्यस्था, मनको रोक होय तो स्वस्था।
भाव चित्त का करै विनाशा ,होता केवलज्ञान प्रकाशा ॥४७॥

अर्थ- बाह्य सुखों में मध्यस्थ भाव कर अभ्यंतर मन को रोककर तन को शून्य बनाता योगी मात्र मन का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है अर्थात् द्रव्य मन के होते हुए भी मनोइंद्रिय में लब्धि और उपयोगरूप क्रिया नहीं रहती।

जं परमप्पय तच्चं तमेव विसकामतत्तमिह भणियं।
झाणविसेसेण पुणो णायव्वं गुरूपसाएण ॥४८॥

यत् परमात्मकं तत्त्वं तदेव विषकामतत्त्वमिह भणितं।
ध्यानविशेषेण पुनः ज्ञातव्यं गुरूप्रसादेन ॥४८॥

(चौपाई)
तत्त्व परम आत्मा ही जानो, काम तत्त्व ताही को मानो।
ध्यान भेद और भी कोई, गुरु उपदेशित सोहू होई ॥४८॥

अर्थ- जो परमात्मा है वह ही काम तत्त्व है, अन्य कोई काम तत्त्व नहीं है। और भी गुरु उपदेशतै ध्यान के भेदों का अभ्यास करो।

कामंधो मयमत्तो इंदियलुद्धो सहावदोलाओ।
जइ पुण तं पयडत्थं अक्खिवज्जइ तहिमि खुप्पेइ ॥४९॥

कामांधः मदमत्तः इन्द्रियलुब्धः स्वभावदोलातः।
यदि पुनः तं प्रकृतार्थं .... ॥४९॥

(चौपाई)
काम अंध मदमाते जीवा, पंचेन्द्रियमें रक्त सदीवा।
लोक अन्य योगादि दिखाते ,सो संसार विषै भटकाते ॥४९॥

अर्थ- काम से अंधे पाँचों इन्द्रियों के विषय के लोलुपी मदोन्मत जीव लोकनिको कुछ योगाभ्यास के आभासरूप साधना से स्पष्ट कुछ चमत्कारादि दिखाते हैं, ते संसारिक विषयों में उन लोगों को फंसाते हैं।

भावार्थ- मैस्मेरीजम प्राणायाम नेती धोती क्रिया जिसमें कि आंतै बाहर निकाल धोकर पीछी स्थापित करना इत्यादि चमत्कार दिखाके भोले लोगों को भ्रम डालकर दीर्घ संसार की वृद्धि करै है, क्योंकि इन क्रियाओं में कष्ट तो बहुत, लौकिक चमत्कारादि के सिवाय कुछ आत्महित होना नहीं। इन्द्रिय विषय की ही पुष्टि होती है सो संसार वृद्धि का कारण है। जैसे इन्द्रजालिया मुख में लोह गोले निगल जाय पीछे काढले और रेशम का धागा नाक में होकर मुंह में निकाल ले तैसे है शुभचन्द्र, भर्तृहरि दोनों भाई संसार में विरक्त हो वन में गये। शुभचन्द्र दिगम्बर साधु हुए। भर्तृहरि मार्ग भूल अलग हो गये सो रसकुप्पिका के लोभ में पड़ गोरखनाथ के शिष्य होकर २ रसकुप्पिका पाई सो बड़े भाई शुभचन्द्र मुनि को ढुंढवाकर उनके पास भेजी। वह निष्पृही, उसने कुप्पिका को पत्थर पर पटकवा दी तब भर्तृहरि दूसरी कुप्पिका लेकर स्वयं गया तब उसको समझाने के लिये ज्ञानार्णव ग्रंथ बनाया। ध्यान का उसमें विशेष वर्णन है, सो वहां से जानना।

अंतज्जोई कमलं बिंदुं णादं च तहय चउभेयं।
अण्णं चिय विण्णाणं सव्वं भवकारणं भणियं ॥५०॥

अन्तर्ज्योतिः कमलं बिंदुर्नादं च तथा चतुर्भेदं।
अन्यमपि विज्ञानं सर्वं भवकारणं भणितं ॥५०॥

(चौपाई)
अंतर्ज्योति कमल बिंदी है, नादमयी चव[1] भेदी है।
और किते ही ध्यान प्ररूपा, सो जानो भव कारण रूपा ॥५०॥

अर्थ- अन्तर्ज्योति, कमल, बिंदु, नाद ऐसे चार तरह का ध्यान अन्यमती कहैं सो सब संसार का

1- चार

कारण है अब अवसर पाके और मतवालों की जो ध्यान प्ररूपणा है वह व्यर्थ है ऐसा दिखाते हैं-

सांख्य द्रव्य को सर्वथा नित्य अपरिणामी मानता है, इसलिये अपरिणामी आत्मा की ध्यान में परिणति होना उसकी मान्यता विरुद्ध है। परिणति नहीं मानने पर सुख सुख का अनुभव स्मरण इच्छादि परिणति के अभाव से तत्त्व का चिंतवन तो नित्यवादी के बन ही नहीं सकता। फिर ध्यान करने से क्या लाभ अतः नित्यवादी सांख्य की ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है।

और जो बौद्धादि सर्व वस्तु अनित्य क्षणभंगुर ही मानते हैं तो फिर ध्यान का प्रारम्भ तो किसने किया और फल किसको मिले और प्रति समय जीव बदलता गया तब एकाग्र चिंतवन रूप ध्यान स्थिर नहीं सकता, क्योंकि स्थिर जीव में ही स्थिर चिंतवन हो सकता है।

अतः अनित्यवादी बौद्ध की ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है और देहात्मवादी चार्वाक जो कि पृथ्वी अग्नि पवन आकाश के संयोग से चैतन्य शक्ति अर्थात एक कल बन जाती है उसके पुर्जों में खराबी आ जाने से चैतन्य शक्ति मिट जाती है पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा मानने वाले चार्वाक को ध्यान की आवश्यकता ही नहीं। ध्यान तो वह करे जो कि सुख दुःख स्वर्ग मोक्षादि रूप जीव की अवस्था माने और विज्ञानवादियों के ज्ञान मात्र ही वस्तु मानी है, जानने मात्र ही है, अन्य पदार्थ ही नहीं, तो ज्ञेय को जाने बिना ज्ञान ऐसी संज्ञा कैसे हुई।

इसलिये ज्ञान ज्ञेय संबंध अनादि है और पदार्थ ज्ञान मात्र ही है तो ध्यान किसका करें और जिनके मन में जाननेवाला ज्ञान ही नहीं तो स्व का अनुभव कैसे हो अनुभव के बिना ध्यान कैसे हो सकता है।

अर्थात् अनुभव ही तो ध्यान है और ध्यान के बिना किये निराकुल होता नहीं तब ही जानने मात्र है। ऐसा मानने वाले विज्ञानवादी की ध्यान कल्पना व्यर्थ है और नैरात्मवादी जो शून्यवादी वह सर्व शून्य मानते हैं, उनके ध्याता ध्येय ध्यान ध्यान का फल वह सब कल्पना कछुए के केशों से आकाश के फूलों की माला गूंथना है।

और द्वैतवादी नैयायिक वैशेषिक ईश्वर और जीव की दो जाति मानते हैं और जीव कभी ईश्वर हो सकता नहीं अतः सदा सुखी रह सकता नहीं तो फिर ध्यान से क्या सिद्ध साधना है अतः द्वैतवादियों के भी ध्यान प्ररूपण व्यर्थ है।

और अद्वैतवादी जो कि तोमें, मोमें, खड़ग में ,खेम में एक सर्वव्यापी ईश्वर है ऐसा मानते हैं, ईश्वर सिवाय दूसरा पदार्थ ही नहीं ऐसे वेदांती तिनके ध्यान करनेवाला ईश्वर ध्येय भी ईश्वर और ईश्वर तो खुद ही है फिर उसमें ऊंचा और कौन है वैसा बनने के लिये ध्यान करै ऐसे अन्य एकांत मतवालों के ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है।

और जैन अनेकांती वस्तु को द्रव्य अपेक्षा नित्य पर्याय अपेक्षा अनित्य पृथ्वी जल आदि जनित शरीर है उसमें यह जीव अपने पूर्व बांधे शुभ अशुभ कर्मों के उदय से शरीर प्रमाण हो शरीर में आयुकर्म के आधीन रहता है फिर इसको पूर्ण करके अन्य शरीर धारण करता है।

अतः इस शरीर अपेक्षा पुनर्जन्म नहीं क्योंकि वर्तमान शरीर में यहीं रह जाता है। जीव निकलकर अन्य शरीर में जन्म लेता है वह परभव है और सर्वज्ञ के ज्ञान मात्र ही वस्तु है। ज्ञान बाह्य कोई वस्तु नहीं भूतभविष्यवर्तमान त्रिकाल गोचर वस्तु सर्वज्ञ के ज्ञान बाह्य नहीं, अतः उनके ज्ञान मात्र ही वस्तु है। ज्ञान ही है और कुछ नहीं यह कथन नहीं बन सकता। जीव बिना सर्व पुद्गलादि पदार्थ अन्य हैं इनका संबंध ही संसार है ऐसैं तो शून्य भावना संभबै।

और जो सर्वलोक में कोई पदार्थ ही नहीं ऐसा कहलाने वाले भी तो हैं।

शून्य कैसे मानते हैं और संसारी जीव कर्मकाट मुक्त हुए हैं वह पहले हुए ईश्वरों में मिलै नहीं, द्रव्य क्षेत्र काल भाव तैं जुदे हैं, इस अपेक्षा तो संसारी ईश्वर नहीं होते।

ईश्वर सरीखे गुण नवीन मुक्त जीवों में नहीं ऐसा मानना नहीं बन सकता सो गुणों की अपेक्षा सर्व मुक्त जीव समान हैं और द्रव्य क्षेत्र कालादिक की अपेक्षा भिन्न हैं और उनका ज्ञान सर्वत्र तोमें ,मोमें, खड्ग में, खंभ में, लोक अलोक में सर्वत्र व्याप्त है। इस अपेक्षा तो सर्वत्र ईश्वर व्याप्त है।

अद्वैतवादियों की तरह सर्वत्र ईश्वर ही का अंश है यह नहीं बन सकता।

यह संसारी कर्मबंध तैं बंधे पुराने भोगते जाते हैं, नवीन बांधते जाते हैं तो इस दुःख के फंदे से छूटने के लिये ध्यान करै, क्योंकि जीवद्रव्य की पर्यायें पलटती रहती हैं और ध्यानादि तैं याकी परिणति शुभाशुभ क्रिया से छूट शुद्धोपयोग में लगाकर हेय को छोड़ उपादेय को ग्रहण कर कर्म की निर्जरा करि सर्वथा कर्म मुक्त होकर अनंत गुणों के धारक ईश्वर होते हैं, वहां से विना कर्म के भव धरना नहीं। अतः जन्मना मरना नहीं, शरीर और इंद्रिय नहीं अतः आकुलता नहीं स्वात्मजनित सुखों का अनुभव करते तिष्ठे हैं। अतः अनेकांत मत में ही ध्याता ध्यान, ध्येय और ध्यान का फल यह कथन हो सकता है परवादि एकांतियों के नहीं।

ध्यान के साधनों का वर्णन-

वयणियमसीलसंजमगुत्तीओ तह य धम्म रयणाइं।
लब्भंति परमझाणे अण्णंचिय जं च दुल्लभयं ॥५१॥

व्रतनियमशीलसंयमगुप्तयः तथा च धर्मः रत्नानि।
लभ्यंते परमध्यानेन अन्यदपि च यच्च दुर्लभं ॥५१॥

(चौपाई)
व्रती नियम शील युत होई, संयम रत्नत्रय रत जोई।
परम ध्यान तो वो ही पाई, और भांत दुर्लभ है भाई ॥५१॥

अर्थ- व्रत, नियम, शील, संयम, गुप्ति तथा धर्म रत्नत्रय इनके धारण किये परम ध्यान जो शुक्ल ध्यान तिस की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

भावार्थ- इनके धारण तै निराकुलता होती है, इन्द्रियें वश होती हैं, तब चित्त की एकाग्रता होती है इसलिये ध्यान करने वाले के लिये इनका पालना आवश्यक है।

शारीरिक चिह्नों द्वारा मृत्यु आदि फल विचार [1] -

णासाजोई जीहा अदंसण पंच तिण्णि एयाई।
घोसा सवणे सत्तय चंदाच्छिद्दंमि दह दिवहा ॥५२॥

नासाज्योतिः जिह्वा अदर्शनं पंच त्रीणि एकादि।
घोषा श्रवणे सप्त .... दश दिवसानि ॥५२॥

(चौपाई)
नाक भमी जिह्वा नहिं जोई, पण त्रय इक दिन जीवै सोई।
बहिरा होय सात दिन जीवा, छिद्रित चांद दिवस दस सीवा ॥५२॥

अर्थ- नासिका का अग्र भाग दिखना बंद हो उससे पाँच दिन में मृत्यु होती है। भमि मध्य नहीं दीखै तो तीन दिन में मृत्यु होती है। जिव्हा नहीं दीखै तो १ दिन में मृत्यु होती है। कर्ण में एकाएक मे श्रवणशक्ति नहीं रहै तो ७ दिन में मृत्यु होती है। चन्द्रमा छिद्र सहित दीखै तो १० दिन में मृत्यु होती है। (भमि किसी अंग का नाम है सो समझ में नहीं आया)।

पवन वाचनादि शुभाशुभ का वर्णन-

खिदिजलमरुहवि गयणं णाडीचक्कंमि पंच तत्ताइं।
एक्कोक्कं चिय घडियं कमेण पवहंति उदयाओ ॥५३॥

क्षितिजलमरुदपि गगनं नाडीचक्रे पंचतत्त्वानि।
एकैकमपि घटिकं क्रमेण प्रवहंति उदयात् ॥५३॥

(चौपाई)
पृथ्वी सलिल पवन अग्नी हैं, नभयुत पाँच तत्त्व ये ही हैं।
एक एक घटि उदय इन्हींका, और कहु सुन भेद हु नीका ॥५३॥

अर्थ- पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश यह पाँच तरह का पवन है, यह ही पाँच नाडीचक्र हैं इनका एक एक घड़ी का उदय रहता है।

उड्ढं वहदि य अग्गी अहो जलं तह तिरिच्छओ पवणो।
मज्झपुडंमि य पुहई णहोवि सव्वंपि पूरंतो ॥५४॥

ऊर्ध्वं वहति च अग्निः अधो जलं तथा तिर्यक् पवनः

1- इस गाथा का शीर्षक पुरानी छपी हुई प्रति में इस प्रकार दिया गया था- "ध्यान से स्वतः ही सांसारिक प्रयोजन भी सधते हैं" किन्तु यह शीर्षक कुछ उचित प्रतीत नहीं हुआ इस कारण इसे बदला गया है।

मध्यपुटे च पृथ्वी नमोपि सर्वमपि पूरयत् ॥५४॥

(चौपाई)
अग्नी ऊर्ध्व निम्न गति पानी, पवन वेग तिरछी गति जानी।
पृथ्वी निश्चल मध्य निवासा, सर्व व्याप्त मानो आकाशा ॥५४॥

अर्थ- अग्नि तत्त्व ऊर्ध्वगामी है, जल तत्त्व नीचे को बहता है वायु तत्त्व तिरछा चलता है। पृथ्वी तत्त्व मध्यभाग में स्थिर रहता है आकाश तत्त्व सर्वव्यापी है।

अग्गितियंगुलमाणो छंगुल पवणो य पुहइतच्चि उणो।
चउवीसंगुलमाणो व वहइ सलिलं च तत्तम्मि ॥५५॥

अग्निः त्र्यंगुलमानः षडंगुलः पवनः च पृथ्वीतत्त्वं पुनः।
चतुर्विंशांगुलमानः वा वहति सलिलं च तत्त्वे ॥५५॥

(चौपाई)
अग्नि तीन अंगुला जेती, पवन अंगुली छै हों तेती।
पृथ्वी बारह अंगुल जानो, चतुर्बीस अंगुलि जल मानो ॥५५॥

अर्थ- अग्नि तीन अंगुल प्रमाण बहती है, पवन तत्त्व छै अंगुल बहता है। पृथ्वी बारह अंगुल, जल २४ अंगुल बहता है।

कंठुद्धेण हु सासो णाहीउड्ढंमि मुणह तह पवणो।
जाणुद्धं तह पुहई सलिलं चिय पादउड्ढंति ॥५६॥

कंठोर्ध्वेन हि श्वासः नाभ्यूर्ध्वे मन्यस्व तथा पवनः।
जानूर्ध्वं तथा पृथ्वी सलिलमपि पादोर्ध्वमिति ॥५६॥

(चौपाई)
अग्नि कंठ उपरै होई, पवन नाभि पायु जल सोई।
घुटने ऊपर पृथ्वी वासा, इन स्थानोंमें पवन निवासा ॥५६॥

अर्थ- कंठ के उपरिम भाग में अग्नि तत्त्व नाभि में पवन तत्त्व घुटने के ऊपर पृथ्वी तत्त्व, गुदा से उपरिम भाग में जल तत्त्व का निवास है।

अग्गि तिकोणो रत्तो किण्हो य पहंजणो तहा वित्तो।
चउकोणं पिय पुहवी सेय जलं सुद्धचंदाभं ॥५७॥

अग्निः त्रिकोणः रक्तः कृष्णश्च प्रभंजनस्तथा वृत्तः
चतुष्कोणं अपि पृथ्वी श्वेतं जलं शुद्धचंद्राभं ॥५७॥

(चौपाई)
अग्नि त्रिकोण लाल रंग भासा, पवन गोल अरु श्याम प्रकाशा
भूमि पीत चोकोर हि जानो, सलिल श्वेत चंद्राभ पिछानो ॥५७॥

अर्थ- अग्नि त्रिकोण लाल रंग, पवन गोलाकार श्याम वर्ण, पृथ्वी चोकोण पीतवर्ण, जल अर्द्ध चंद्राकार शीतल चंद्रसमान श्वेत होता है।

पुहई सलिलं च सुहं वामाणाडी य प्रवहणमाणमिणं।
तेयं पवणं च णहं असुहाइ इमाइ तत्ताइं ॥५८॥

पृथ्वी सलिलं च शुभं वामानाडी च प्रवहमानमिदं।
तेजः पवनश्च नभः अशुभानि इमानि तत्त्वानि ॥५८॥

(चौपाई)
बहै वाम नाडी तैं जानो, सो जल पृथ्वी सुखकर मानो।
अग्नि पवन नभ बहै दुखकारी, दक्षिण नाडी तैं गति धारी ॥५८॥

अर्थ- पृथ्वी और जल तत्त्व वाम नासिका में प्रवेश करती सो शुभ; अग्नि, पवन, आकाश वाम नासिका से बहै सो अशुभ है,

सो ही ज्ञानार्णव में कहा है-

वामेन प्रविशन्तौ वरुणमहेन्द्रौ समस्तसिद्धि करौ।
इतरेण निःसरन्तौ हुतभुक्पवनौ विनाशाय ॥७५॥
[सर्ग २६: प्राणायाम / श्लोक १३८०]

जल और पृथ्वी यह वामनाडी से प्रवेश करती सर्वसिद्धि करती है। अग्नि और वायु द्वितीयादक्षिण नाडी से निकलती विनाश के लिये है।

इडपिंगलाण पवणं सीउण्हं तत्त परमयं णाओ।
ये छीओण सुहमसुहं जीवियमरणं च जाणेह ॥५९॥

इडापिंगलयोः पवनः शीतोष्णः ....।
.... शुभमशुभं जीवितमरणं च जानाति ॥५९॥

(चौपाई)
इडा पिंगला ठंडी ताती, जानो सुख दुखकर यों ख्याती।
जीवन मरण आदि सब जोई, सो सब निश्चय यातैं होई ॥५९॥

अर्थ- इडा वाम नाडी, पिंगला दक्षिण नाडी और शीत उष्ण को सम्यक् जानकर फिर उससें सुख दुख जीवन मरण को जानो ऐसैं संक्षेप से वर्णन है। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णव के उनतीसवें पर्व से जानना चाहिये। यहां कथन करने में विस्तृत हो जायगा इसलिये नहीं लिखा है। ज्ञानार्णव से इसमें कुछ अंतर है सो लौकिक बातों में है, परमार्थ वर्णन में तो अंतर नहीं। ज्ञानार्णव में विशेष वर्णन है।

अब संसार की अनित्यता बताते उपसंहार करैं हैं-

तडिदंबुबिंदुतुल्लं जीविय तह जोव्वणं धणं धण्णं।
णाऊणमिणं सव्वमथिरं परमप्पबुद्धीए ॥६०॥

तडिदंबुबिंदुतुल्यं जीवनं तथा यौवनं धनधान्यं।
ज्ञात्वा इदं सर्वं अस्थिरं परमात्मबुद्ध्या ॥६०॥

(चौपाई)
बिजली जल बुदबुद वत प्यारे, जोबन जीवन तन धन सारे।
ऐसें सब अस्थिर पहचानो, परम ध्यानको करहु प्रमाणो ॥६०॥

अर्थ- बिजली अथवा जल बुदबुद समान जीवन यौवन, धन-धान्य सब अस्थिर हैं। इस प्रकार परमार्थ बुद्धि से जानो।

णियमणपडिबोहत्थं परमसरूवस्स भावणणिमित्तं।
सिरिपउमसिंहमुणिणा णिम्मवियं णाणसारमिणं ॥६१॥

निजमनः प्रतिबोधार्थं परमस्वरूपस्य भावनानिमित्तं।
श्रीपद्मसिंहमुनिना निर्मापितं ज्ञानसारमिदं ॥६१॥

(चौपाई)
निज मन के प्रतिबोधन काजा, परम आत्मध्यान का साजा।
पद्मसिंह मुनि ने यह कीना, ज्ञानसार यह ग्रन्थ नवीना ॥६१॥

अर्थ- निज मन को प्रतिबोधने के लिये पद्मसिंह मुनि ने परम स्वरूप का ध्यान करने को यह ज्ञानसार ग्रंथ बनाया है।

सिरिविक्कमस्स काले दशसयछासोजुयंमि वहमाणे।
सावणसियणवमीए अंवयणयरम्मि कयमेयं ॥६२॥

श्रीविक्रमस्य काले दशशतषडशीतिजुते वहमाने।
श्रावणसितनवम्यां अंबकनगरे कृतमेतत् ॥६२॥

(चौपाई)
एक सहस अरु छ्यासी साला, विक्रम संवतका है काला।
श्रावण सुदि नौमी दिन सोई, अंबड [1] नगर पूर्ण सो होई ॥६२॥

अर्थ- श्री विक्रम संवत् १०८६ में श्रावण सुदि ९ को अंबड [2] नगर में बनाया।

1,2- टीकाकार ने अर्थ करते समय यहा अंबड नगर लिख दिया है किंतु अन्य जगह पर इसी गाथा के अर्थ में अंबक नगर लिखा है और संस्कृत श्लोक एवं प्राकृत गाथा के अनुसार भी इसका अर्थ अंबक ही होना चाहिए।

परिमाणं च सिलोया चउहत्तरि हुंति णाणसारस्स।
गाहाणं च तिसट्ठी सुललियबंधेण रइयाणं ॥६३॥

परिमाणेन च श्लोकाः चतुःसप्ततिः भवंति ज्ञानसारस्य।
गाथानां च त्रिषष्ठी सुललितबंधेन रचितानाम् ॥६३॥

(चौपाई)
प्राकृत त्रय षष्ठी हैं गाथा, श्लोक अनुष्टुप बहत्तर साथा[3]।
ललित शब्द मय रचना कीनी, ज्ञानसार यह संज्ञा दीनी ॥६३॥

अर्थ- प्राकृत गाथा ६३ जिसका अनुष्टुप छन्दों में प्रमाण ७२ है[4]। इसकी ज्ञानसार संज्ञा रखकर ललित शब्दों में रचना की है।

चौपाई- बंध तथा टीकाकार की प्रशस्ति

(दोहा)
गुलाबचन्द रु राजमल, सोनी गोत्री जोय।
दीना भाषा करनको, उपकृत बुद्धी होय ॥१॥
प्राकृत गाथामय हुता, णाणसार यह ग्रन्थ।
पद्मसिंह मुनीन्द्रकृत, मोक्षमार्गका पंथ ॥२॥
प्राकृतकी टीका हुती, संस्कृत भाषा मांहि।
दोनोंके आधारसे, कीना मुझ कृत नांहि ॥३॥
गद्य विषै कछु अधिकहू, अन्य ग्रंथ आधार।
धनालाल गुरु कृपातें, पढ़कर लिखा विचार ॥४॥
कछु अयुक्त हू लिखा हो, शुद्ध करैं गुणवान।
बालक ठोकर खाय तो, पुचकारहिं धीमान ॥५॥
उन्नीसो सत्तर विषै, कार्तिक वदि तिथि नौमि।
त्रिलोकचंद्र पूरण किया, रहो जहांतक पहुमि ॥६॥
सुबस बसो पुर केकड़ी, जहं सहधर्मी थोक।
औषध चट शाला तणी, मदत करैं सब लोक ॥७॥

3,4- ऊपर लिखी गाथा एवं श्लोक के अनुसार बहत्तर नहीं चौहत्तर श्लोक होने चाहिएं।

॥इति संपूर्णम्॥



श्रीपद्मसिंह मुनिराजकृत—

णाणसार (ज्ञानसार)

मूलगाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दबद्ध और भाषाटीका सहित।



भाषाटीकाकार :

पं० त्रिलोकचन्दजी जैन, केकड़ीनिवासी।



प्रकाशक :

मूलचन्द किसनदास कापडिया,

दिगम्बर जैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन, सूरत।

श्री० स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबका (बड़ौदा) नि० के स्मरणार्थ उनके पुत्र श्री० सेठ सौभाग-चंदजीकी ओरसे 'जैनमित्र' के २५ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

प्रथमावृत्ति] कार्तिक वीर सं० २४५० [प्रति १५००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—छह आना।

